इकाई 12 राज्य, समाज और धर्म*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 राज्य और समाज के बीच संबंधों का पुनःनिरीक्षण

12.2.1 हितों की पारस्परिकता–पारिस्थितिक संदर्भ का महत्व

12.2.2 स्थानीय रीति–रिवाजों की प्रधानता

12.3 राज्य और समाज के संबंध में धर्म की स्थिति की तलाश

12.4 विरोधाभासी रूझान

12.5 मिश्रित सामाजिक परिवेश

12.6 सारांश

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- राज्य, धर्म और समाज के बीच संबंधों की जटिलताओं की सराहना कर पायेगें;
- यह जान सकेगें कि सांस्कृतिक लोकाचार बहुत मिश्रित था;
- यह समझेगें कि राज्य या समाज या धर्म पारस्परिक रूप से अनन्य नहीं थे,
- राज्य समाज का एक विस्तार था और इसलिए यह बहुत अवयवी रूप से जुड़ा हुआ था,
- यह समझेगें कि राज्य और समाज के बीच पारस्परिक निर्भरता धार्मिक कट्टरता के लिए बहुत सीमित स्थान की अनुमति दे सकती थी,
- राजकीय तंत्र के हस्तक्षेप को नियमित करने में स्थानीय रीति–रिवाजों ने किस हद तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, इसकी सराहना कर पायेगें,
- यह समझ पायेगें कि साहित्य और सांस्कृतिक आयाम अपने स्वरूप और विषय वस्तु में बहुत मिश्रित प्रकार के थे।

12.1 प्रस्तावना

अध्ययन की अवधि के दौरान राज्य, धर्म और समाज जैसी विषय–वस्तुओं और उनके अन्तर्संबंधों की जाँच–पड़ताल कई कारकों के कारण बहुत चुनौतीपूर्ण है। अक्सर यह तर्क रहा है कि राज्य, धर्म और समाज के विभिन्न आयामों की जाँच करने के लिए पर्याप्त

*डॉ. मयंक कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, दिया जाता इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध नहीं हैं। हालांकि, पिछले कुछ दशकों में सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी के भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न आयामों में हुए शोधों ने इसे बहुत चुनौती दी है। इसके अलावा, हमने आपके साथ हाल के शोधों को साझा करने का प्रयास किया है जैसा कि इस पाठ्यक्रम की विभिन्न इकाईयों के साथ–साथ **बी एच आई सी–109** में भी दिखाई पड़ता है।

इसके अलावा, अब यह माना जाना लगा है कि सोलहवीं–अठाहरवीं शताब्दी में, जिस तरह से समाज ने खुद को विकसित किया और अन्य समाजों और प्राकृतिक विश्व के साथ संबंध बनाये, उस बारे में दुनिया ने भारी बदलाव देखा। धार्मिक दृष्टिकोण और सांस्कृतिक प्रथाओं में पर्याप्त परिवर्तन हुए जिनमें राज्य की बढ़ती पहुँच और दस्तावेजीकरण की क्षमता में वृद्धि पर शोध हो रहे हैं। (**बी एच आई सी 144 की इकाई 11** में बाखर और बुरूंजी जैसे स्रोतों का विस्तृत विवरण दिया गया है)। इस प्रकार, राज्य के चरित्र पर भी दुबारा गौर किया जा रहा है। इस अवधि के लिए उपलब्ध दस्तावेजों की विशेष रूप से अठारहवीं शताब्दी के लिए, घरेलु मसलों की बारीकियों को सामने लाने के लिए विस्तार से जाँच पड़ताल की गई है। क्षेत्रीय विविधताओं बहुत स्वाभाविक है। 'आरंभिक आधुनिक' की अवधारणा पर अब भारतीय समाज के संदर्भ में भी बहस हो रही है। हम सोलहवीं–अठारहवीं शताब्दी के भारतीय उपमहाद्वीप में प्रारंभिक आधुनिक विशेषताओं की जाँच–पड़ताल भी करेंगे।

अंत में, प्रारंभिक आधुनिक काल को कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ पहचाना जा रहा है और पहचाना जा सकता है, ये विशेष रूप से राज्य के चरित्र, राज्य और धर्म के बीच संबंधों, धार्मिक विचारों, उन्नत प्रलेखन, ज्ञान तक अधिक पहुँच, विचारों के गहन प्रसार, मुद्रा अर्थव्यवस्था की अधिक पैठ, आदि के संबंध में हैं, जिनकी वैश्विक प्रतिध्वनि भी सुनाई पड़ती है। इसलिए, राज्य, धर्म और समाज के बीच अन्तःक्रियाओं का एक प्रारंभिक सर्वेक्षण इस विश्वास के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है कि आप इसमें शामिल जटिलताओं की सराहना करेंगे।

12.2 राज्य और समाज के बीच संबंधों का पुनःनिरीक्षण

पारंपरिक इतिहास लेखन ने राज्य और समाज के बीच एक निश्चित स्तर के पृथक्करण का सुझाव दिया। विशेषरूप से औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा यह सुझाव दिया गया था, जो मूलतः शासक अभिजात वर्ग द्वारा सहजगोचर उपभोग राज्य के चरित्र को परिभाषित करता था। राजाओं और वंशवादी केन्द्रित इतिहास ने शासकों के कार्यों और नीतियों पर ध्यान केन्द्रित किया। इसके बाद, राज्य के तंत्र की जाँच की गई, लेकिन मुख्य रूप से अधिकारियों और उनके कर्त्तव्यों और विशेषाधिकारों के संदर्भ में। शासक वर्ग की सामाजिक संरचना और उसके व्यापक सामाजिक प्रभावों की शायद ही कभी जाँच पड़ताल की गई थी। कृषि उत्पादन, भू–राजस्व प्रणाली का मुख्य आधार था, फिर भी कृषि उत्पादन की प्रकृति, चरित्र और विविधता और उसके परिणामजन्य विविधता की जाँच पड़ताल नहीं की गई थी। इसके अलावा, भू–राजस्व के मामलों के प्रबंधन के लिए साम्राज्य के तन्त्र और बिचौलियों के महत्व, उनकी सामाजिक संरचना आदि को उचित मान्यता नहीं दी गई थी। जलवायु की विविधता के निहितार्थ, परिदृश्य, उनकी अन्तःक्रियाओं और सामाजिक सामन्जस्य को ऐतिहासिक जाँच के योग्य भी नहीं माना गया।

इसी तरह, सामाजिक रीति–रिवाजों, कर्म–कांडों, धार्मिक प्रथाओं का केवल वर्णन किया गया था, समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा उनके महत्व और अधिग्रहण, और उनके अन्तर्संबंधों की शायद ही कभी जाँच–पड़ताल की गई थी। रीति–रिवाजों का अध्ययन, दरबार की नैतिकता, दरबार की संस्कृति और वैधीकरण की प्रक्रिया में उनका महत्व इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित करने योग्य है। वनस्पतियों और जीवों का उल्लेख केवल एक पृष्ठभूमि के रूप में पाया गया, सामाजिक परिस्थितियों की बेहतर समझ के लिए मानव प्रकृति की अन्तःक्रिया के महत्व को अभी भी इतिहासकारों की कल्पना में आना बाकी था। हालाँकि ऐतिहासिक अन्वेषणों का क्षेत्र धीरे–धीरे विस्तृत होता जा रहा था। और हम इतिहासकारों द्वारा, अक्सर अपने स्रोतों का पुनः निरीक्षण करके या कभी–कभी दस्तावेजों के नये समुच्चय खोल कर, जैसे राजस्थान राज्य अभिलेखागार, आंध्र प्रदेश राज्य अभिलेखागार, हैदराबाद आदि में उपलब्ध रिकार्डस के आधार पर जाँच के क्षेत्रों का विस्तार होते देखते हैं।

दरबार के इतिवृत्तों से परे जानाः इस अवधि के लिए अभिलेखीय स्रोत

सौभाग्य से सोलहवीं–अठारहवीं शताब्दी की बीच की अवधि के लिए विशेष रूप से राजस्थान से हमारे पास अदृश्य प्रकृति को दृश्यमान बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक स्रोत है। जेन्डर संबंधों, घरेलू टकराव, राज्य के बढ़ते हस्तक्षेप, राज्य की संघर्षों के निदान में भूमिका और संघर्षों के बारे में एक व्यापक समझ प्रदान करने के लिए भी इन स्रोतों की व्यापक जाँच–पड़ताल की गई है। आरंभ करने के लिए, हम विभिन्न संग्रहों में उपलब्ध अभिलेखीय और साहित्यिक दस्तावेजों की कुछ श्रेणियों को सूचीबद्ध कर रहे हैं। राजस्थान अभिलेखागार में इस अवधि के लिए कई प्रकार के आधिकारिक दस्तावेज उपलब्ध है। ये हैं अर्जदास्त, चिट्ठी, अड़सत्ता, सनद परवाना बही, कागज बही, वकील रिर्पोट, हकीकत बही, सावा बही, आदि। ये स्रोत प्राकृतिक संकट, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि विविध प्रकार के उल्लंघन के प्रति आधिकारिक प्रतिक्रिया को रेखांकित करते हैं और इसके परिणामस्वरूप, ये हमें समकालीन सामाजिक राजनैतिक प्रतिक्रियाओं और सरोकारों की झलक प्रदान करते हैं। राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च इन्सटीट्यूट ने कई महत्वपूर्ण समकालीन साहित्यिक स्रोत, आधिकारिक इतिहास, प्रशासनिक नियमावली प्रकाशित की है। *मारवाड़ परगना री विगत* के प्रकाशन के अलावा, राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च इन्सटीट्यूट ने *मुन्होत नैणसी री ख्यात* और कई अन्य राजवंशीय इतिहास प्रकाशित किये हैं। लालगढ़ किला बीकानेर में सरस्वती भंडार, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल्स संस्थान, उदयपुर, मानसिंह पुस्तक प्रकाश, चौपासिनी, कपाटद्वारा रिकॉर्ड, आमेर में, विविध साहित्य का उत्कृष्ट संग्रह मौजूद है। हमें क्षेत्र की रियासतों द्वारा बनाये गए दृश्य प्रलेखनों के साथ–साथ भौतिक संस्कृति के संग्रह को भी नहीं भूलना चाहिए। क्षेत्र में जैन धार्मिक साहित्य के संग्रह और विशेष रूप से जैन विश्व भारती लाडंनू का उल्लेख करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है (मयंक कुमार, 'इनविजिबल–विजिबलः सोंसिसेज, एनवायरमेंट एंड हिस्टोरियन्स,' रंजन चक्रवर्ती, (सं), *क्रिटीकल थीम्स इन एनवायरमेन्टल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, सेज, न्यू दिल्ली, 2020 पृष्ठ 17–52)।

कैफियत या कर्नाम

कैफियत या कर्नाम अठारहवीं शताब्दी के अन्त में कर्नल कोलिन मैंकेंजी के पर्यवेक्षण में एकत्र किये गये गाँव के स्थानीय रिकार्ड हैं। ये अभिलेख स्थानीय वनस्पतियों, जीव

जंतुओं, जल संसाधनों, कृषि उत्पादन और गाँव की सामाजिक संरचना आदि का वर्णन करते हैं। कैफियतों में हमें मौखिक परंपरा की सामान्य समस्याएँ मिल सकती हैं। हालाँकि, कैफियत औपनिवेशिकरण के संबंध में उपयोगी अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं और कुछ उदाहरणों में वे पुरालेखीय या साहित्यिक संदर्भों की पुष्टि करने में मदद करते हैं। कैफियत मध्य काल में जीवन निर्वाह की तरलता का संकेत देते हैं, जब स्थाई जुताई के तहत् भूमि सीमित थी। कैफियत लोक परंपराओं और किवदंतियों को भी संरक्षित करते हैं। (नीरज सहाय, एनवायरमेंट, सेटलमेंट हिस्ट्री एंड द इमरजेन्स ऑफ एन एगरेरियन रीजन इन अरली मेडिवल आन्ध्रा, अप्रकाशित पी एच डी थीसिस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009)।

12.2.1 हितों की पारस्परिकता–पारिस्थितिक संदर्भ का महत्व

इतिहासकारों ने धीरे–धीरे पिछले समाजों की ऐतिहासिक जाँच–पड़ताल में पर्यावरणीय संदर्भों को उचित महत्व देना शुरू कर दिया है। जैसा कि **बी एच आई सी 109** की इकाई 14 और 15 में चर्चा की गई है, डब्ल्यू एच मोरलैंड के लेखन की शुरूआत से और बाद में इरफान हबीब द्वारा, कृषि उत्पादन के महत्व को पहचाना जा रहा था। हालांकि, वे मुख्य रूप से कृषि के भू–राजस्व के रूप में अधिग्रहण तक ही सीमित रहे। इसके बाद सत्रहवीं शताब्दी के लिए राजस्थान की रियायतों से विभिन्न प्रकार के अभिलेखीय स्रोतों तक पहुँच के साथ, सतीश चन्द्र, एस.पी. गुप्ता, दिलबाग सिंह, जी एस एल देवरा, बी एल भदानी, सूरजभान भारद्वाज, मयंक कुमार ने कृषि उत्पादन की प्रक्रिया की बारीकियों की जाँच की है। भू–राजस्व की माँग को निर्धारित करने में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण का ध्यान रखना भी महत्वपूर्ण था। दिलबाग सिंह ने राजस्व माँग में जाति के महत्व पर प्रकाश डाला है। जलवायु की परिवर्तनशीलता की भूमिका, मिली–जुली फसल के माध्यम से मानसून की बारिश के उतार–चढ़ाव के साथ सामाजिक सामन्जस्य और न्यूनतम अवधि में तैयार होने वाली फसलों को जरूरतानुसार प्राथमिकता, सामाजिक प्रथाओं में पशुओं और कृषि–पशुचारिता के महत्व को भी राज्य ने समुचित ध्यान में रखा।

राज्य उत्पादन के अन्य प्रकार के संसाधनों और सामाजिक प्रथाओं पर ध्यान दे रहा था जो राजस्व वसूली की नीतियों में परिलक्षित होता था। "शासकों द्वारा किये गये हस्तक्षेप की पहुंच रोकड़–रकम के आरोपण से आँकी जा सकती है। नकद (रोकड़) में एकत्र किये गये गैर–कृषि करों को रोकड़–रकम कहा जाता था। उत्पादन की अनिश्चित प्रकृति को पहचानते हुए, बीकानेर के शासक रोकड़ रकम पर अधिक निर्भर थे, जिसमें बड़ी संख्या में कर शामिल थे और यह ग्रामीण अंचलों से आय का मुख्य स्रोत था। बसे हुए कृषि क्षेत्रों के विपरीत, चारागाही समुदाय, अर्ध–खानाबदोश थे, और उन पर कर लगाना मुश्किल था। इस प्रकार, पशु–पालन करने वाले समुदायों पर समुदाय में परिवारों की संख्या के आधार पर या चूल्हों की संख्या के आधार पर कर लगाया जाता था; इसलिए, इस कर को *धुंआ भाछ* (रसोई की चिमनी से निकलने वाला धुआ) कहा जाता था यह एक पोल टैक्स था, जो प्रत्येक घर से एक रूपये की दर से वसूल किया जाता था। यह रोकड़–रकम का एक प्रमुख घटक था और कुल राशि में लगभग 40–50 प्रतिशत योगदान देता था। आमतौर पर रोकड़ रकम कुल आय, हासिल का 48 से 50 प्रतिशत होता था (देवरा, 1976)। इसी तरह, गैर–कृषक वर्ग पर चार रूपये प्रति परिवार की दर से एक कर *तालिबाब* लगाया जाता था (पौलेट, 1874: 162)। इसी तरह, सीमित कृषि उत्पादन को देखते हुए, मारवाड़ के शासकों को चारागाही समुदायों पर

कर लगाने के लिए मजबूर होना पड़ा था। राज्य ने अस्थायी बस्तियों पर मकानों की संख्या के अनुसार कर लगाया। इसे झुम्पी–झोपड़ी के नाम से जाना जाता था (मुंहता, 1657–1666, 1969: 88)। गैर–कृषि करों को और ज्यादा बढ़ाने के लिए, बीकानेर के शासकों ने राज्य में बिक्री के लिए व्यापारियों द्वारा लाई गई प्रति ऊँट वस्तुओं के भार पर आठ आने का अतिरिक्त उपकर लगाया।

राज्यों की अर्थव्यवस्था के लिए पशु पालन के मूल्य को पहचानते हुए, शासकों ने घास के उपयोग को विनियमित करने के लिए हस्तक्षेप किया। किसानों के लिए उनके द्वारा उत्पादित घास का एक चौथाई भाग राज्य के साथ साझा करना अनिवार्य था (*कागद बही*, 1827 विस./ई./1770)। इसके अलावा चराई के मैदानों के प्रशासनिक विनियमन के काफी साक्ष्य हैं। अपने संसाधनों को बढ़ाने के लिए, राज्य ने *सिंघोटी*– एक पैसा प्रति मवेशी का कर लगाया। मारवाड़ में, चराई के मैदानों का उपयोग करने वाले कर को *घासमारी* (*मुंहता* 1657–1666, 1968: 167) और *पानचराई* (*भदानी* 1999; *मुंहता* 1657–1666, 1968: 160) के रूप में जाना जाता था। चूंकि पश्चिमी क्षेत्र में पशु–पालन एक प्रमुख व्यवसाय था, इसलिए किसान को अपने खेत में पैदा होने वाली घास का एक हिस्सा राज्य को देना पड़ता था। मारवाड़ में प्रत्येक हल पर घास की भरी एक बैलगाड़ी देनी होती थी। इसके अलावा, इस क्षेत्र में घास की बिक्री पर कर था ''पहले सौ रूपये मूल्य के चारे पर 2.50 रूपये और उसके बाद हर सौ रूपये मूल्य के चारे पर 1.50 रूपये वसूले जाते थे'' (*भदानी*: 223)। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि घास की अनाधिकृत कटाई को भी दंडित किया जाता था (अड़सट्टा, परगना बहात्री, 1786 विस./ई. 1729; परगना मलराणा, 1772 विस./ई. 1715)। दस्तावेज स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि चराई भूमि आरक्षित थी (अड़सट्टा, परगना बहात्री, 1777 विस./ई. परगना मरयाना, 1751 विस./ई. 1734)। यहाँ तक कि पहाड़ियों और जंगलों से भी घास काटने पर दंड दिया जाता था (अड़सट्टा, परगना बहात्री, 1786 विस./ई. 1729; परगन मेलराणा, 1772 विस./ई. 1715)। सेना के लिए घास के मैदान महत्वपूर्ण थे क्योंकि युद्ध में इस्तेमाल होने वाले मवेशियों और घोड़ों को चारे की जरूरत होती थी। जुताई और परिवहन मुख्य रूप से पशु–शक्ति पर आधारित थे और चारागाह की आवश्यकता ने राज्य की नीतियों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (गुहा, 2002)। राज्य ने घुड़सवार सेना के लिए (घोड़े, ऊंट, हाथी), एक रिजर्व भंडार बनाये रखने के लिए सक्रिय रूप से घास की खरीद की (*सनद परवाना बही*, जेठ सुदी 9, 1825 विस./ई. 1768) (मयंक कुमार, 'क्लेम्स ऑन नेचुरल रिर्सोसेजः एक्सप्लोरिंग द रोल ऑफ पोलिटिकल पॉवर इन प्री कोलोनियल राजस्थान, इंडिया', *कन्जरवेशन एंड सोसाइटी*, अंक 3, नम्बर–1 जून 2005, 134–49)।

भू–राजस्व की माँग को निर्धारित करने में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण का भी ध्यान रखा जाता था। दिलबाग सिंह ने राजस्व माँग में जाति के महत्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने यह भी बताया कि राज्य पारस्परिक निर्भरता के बारे में बहुत अच्छी तरह से जानते थे, इसलिए जब साहूकारों ने पारिस्थितिक संकट के समय हद से ज्यादा ब्याज लेने की कोशिश की, तो राज्य ने हस्तक्षेप किया। राज्य इस बात से अवगत था कि संकट के समय किसानों को अपनी खेती के उपकरण बेचने या गिरवी रखने के लिए मजबूर किया जाता, इसलिए राज्य कभी–कभी बीज ऋण भी देता था। (दिलबाग सिंह, 'द रोल ऑफ महाजन्स इन द रूरल इकॉनोमि इन इस्टर्न राजस्थान डयूरिंग द एटीन्थ सेन्चुरी', *सोशल साइंटिस्ट*, अंक, 2 नम्बर 10, अक्टुबर 1974 पृष्ट 22–31)।

12.2.2 स्थानीय रीति–रिवाजों की प्रधानता

इतिहासकारों द्वारा बड़े पैमाने पर राज्य और समाज के बीच वार्तालाप के विविध तरीकों का पता लगाया गया है। उन्होंने इंगित किया है कि राज्य कई स्तरों पर समाज के साथ सक्रिय रूप से संलग्न था, चाहे वह राजस्व अधिग्रहण हो, या न्याय के मामले या सामाजिक मानदंडों या नैतिकता के अनुपालन पर जोर देना। नंदिता सहाय ने तर्क दिया है कि हम राज्यतंत्र और समाज के बीच बड़े पैमाने पर नियमित वार्तालाप देख सकते हैं, जहाँ राज्य अक्सर स्थानीय रीति–रिवाजों और प्रथाओं को प्राथमिकता देता था। अपने अध्ययन में उन्होंने बताया है कि विवाद के मामलों से निपटने वाले आधिकारिक दस्तावेजों में, राज्य अक्सर सुझाव देता है कि प्रचलित सामाजिक रीति–रिवाजों और प्रथाओं के अनुसार निर्णय लें – *जो वाजिब है वो कीजिए*। हालांकि राज्य ने स्थानीय परंपराओं और रीति–रिवाजों को स्थान दिया, लेकिन जहाँ आवश्यक हो वहाँ अपना हुक्म जारी करने में संकोच भी नहीं किया। दिलबाग सिंह का तर्क है कि इन दस्तावेजों में दर्ज निर्णयों की सूक्ष्मता से जाँच–पड़ताल राज्य की एक गहन तस्वीर पेश करती है – यहाँ यह अपनी सत्ता में सर्वोपरि प्रतीत होता है और राज्यों और समाज के मामलों को गाँव, इसके विशिष्ट सामाजिक समूहों और यहाँ तक कि इसके व्यक्तिगत सदस्यों के स्तर तक विनियमित करने में अपने प्रशासनिक तंत्र का पूरा उपयोग करने में संकोच नहीं करता है'। (दिलबाग सिंह, *'रेगुलेटिंग द डोमेस्टिकः नोट्स ऑन द प्रीकोलोनियल स्टेट एंड द फैमिली', स्टडीज इन हिस्ट्री,* अंक 19, नम्बर एक, 2003, 69–86)।

सामाजिक मानदंड सत्तारूढ़ शासन की शक्ति को मजबूत करने के लिए पूर्वापेक्षाओं में से एक रहे हैं। शासकों के लिए, न्याय देने का दावा सामाजिक मानदंडों को दोहराने और सुदृढ़ करने के लिए शक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन रहा है। राजनैतिक व्यवस्था हमेशा सामाजिक व्यवस्था को विनियामित करने के लिए उत्सुक थी, जिससे यह संदेश दिया गया कि सामाजिक स्थिति और पदानुक्रम की रक्षा की जाएगी, जिसने साम्राज्य के सभी प्रजाजनों पर शासन करने के शासकों के दावे को सुदृढ़ किया। राज्य अधिकाधिक सामाजिक मानदंडों के सख्त पालन की अपेक्षा करने लगे, चाहे वह घरेलू मामलों में हों या राज्य के मामलों में। इसलिए, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि बुजुर्गों के निर्णयों के अधिकार और उपयुक्तता को चुनौती देना या उनके साथ तर्क करना सामाजिक आचार संहिता की अवहेलना माना जाता था। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि आचार संहिता का पालन करने का दायित्व परिवार के बुजुर्गों पर भी लागू होता था। यहाँ तक कि बुजुर्गों को भी युवाओं के प्रति अभ्रद व्यवहार के लिए फटकार लगाई जाती थी। सामाजिक विवादों में, राज्य आमतौर पर जाति पंचायतों को समुदाय की स्थापित परंपराओं के अनुसार, जिन्हें *वाजबी* कहा जाता था, मुद्दों को हल करने के लिए निर्देशित किया। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से, राज्य इस अवधि के दौरान आधिकाधिक सामाजिक मानदंडों के संरक्षक और प्रवर्तक के रूप में उभरे।

चामचोरी (शरीर की चोरी) या *जोरावरी* की कई शिकायतें हैं; व्याभिचार और बलात्कार सहित किसी भी प्रकार के यौन दुराचार। राज्य ने ऐसे मामलों के खिलाफ सजा आरोपित की। कभी–कभी यह गाँव पर सामूहिक रूप से अधिरोपित की जाती थी, इसके द्वारा यह सुझाव दिया जाता था कि सामाजिक व्यवस्था और उचित सामाजिक व्यवहार को बनाए रखना एक सामूहिक जिम्मेदारी थी। उदाहरण के लिए, 1749 में रामप्रसादी नामक गाँव के निवासियों के खिलाफ *चामचोरी* में लिप्त होने का आरोप लगाया गया, राज्य ने निवासियों पर सामूहिक रूप से 101 रूपये का जुर्माना लगाया।

मयंक कुमार ने सुझाव दिया है कि विशेष रूप से राजस्थान की राजपूत रियासतों द्वारा शासित क्षेत्र में राज्य विविध प्राकृतिक संसाधनों के, जिन्हें अक्सर गाँव के साझा संसाधन माना जाता था, उनका कुशलता से अधिग्रहण कर रहा था। हमारे पास ऐसे कई साक्ष्य हैं जब हरे पेड़ों को काटने के लिए सजा दी गई थी। परगना बहात्री के गाँव सैथल में एक व्यक्ति को एक नीम का पेड़ काटने पर सजा दी गई, साथ ही जामुन के पेड़ आदि काटने की सजा के भी साक्ष्य हैं। बबूल के पेड़ों को भी काटने पर दंड दिया जाता था। यह बताना महत्वपूर्ण है कि पीपल और बड़ की पूजा की जाती थी, इस प्रकार धार्मिक वजह भी सजा का कारण रहा होगा। हालांकि, सजा को नगद भुगतान द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। जुर्माना राज्य के राजस्व का भाग बन गया और इस राशि के संग्रह या व्यय में धर्म की कोई भूमिका नहीं थी।

इसके अलावा, आमेर रियासत से ऐसे साक्ष्य हैं जो इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि राज्य ने जानवरों को मारने वाले लोगों को भी दंडित किया था। मवेशियों की हत्या की सजा दी गई थी। जेठ सुदी 14, 1854 वि.स. की एक अर्ज़दाश्त हमें सूचित करती है कि जब एक गाय की हत्या की गई थी, तो अपराधी से गाय के मालिक को सोने की एक गाय लौटाने की अपेक्षा की गई थी। पशुचारण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण घटक रहा था। साथ ही कृषि उत्पादन में मवेशियों की उपयोगिता को नहीं नकारा जा सकता। हमारे पास इस बात के साक्ष्य हैं कि एक बंदर तक को मारने के लिए सजा दी गई थी। जानवरों को दी जा रही सुरक्षा को धार्मिक सम्प्रदायों के संदर्भ में देखा जाता है। मगरमच्छों को मारने की भी सजा दी जाती थी (मयंक कुमार, *मानसून ईकोलोजिजः इरीगेशन, एग्रीकल्चर एंड सेटलमेन्ट पैट्रन्स इन राजस्थान डयूरिंग द प्री–कोलोनियल पीरियड,* मनोहर, दिल्ली, 2013)।

बोध प्रश्न 1

1) प्रारंभिक आधुनिक राजस्थान में राज्य के चरित्र को समझने के लिए गैर–कृषि कराधान के महत्व पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) शासकों की शक्ति और वैधता के लिए न्याय देने के अधिकार का क्या महत्व हैं?

.....

.....

.....

.....

12.3 राज्य और समाज के संबंध में धर्म की स्थिति की तलाश

पहले की परम्परा से अलग मुगलों ने खलीफा से वैधता प्राप्त करने की कोशिश नहीं की थी (**इकाई 10 में इसके विवरण पर चर्चा की गई** हैं)। एक ओर वे राजसी संतत्व की

अवधारणा के माध्यम से वैधता प्राप्त कर रहे थे। शततारी के नेतृत्व में ऐसी ही एक परंपरा कम से कम उत्तर भारत में जोर पकड़ रही थी। अबुल फजल के लेखन में हम राजत्व को बाकी लोगों से पृथक और उनसे ऊपर रखने का एक बहुत ही जाना बूझा प्रयास पाते हैं। राजा को जिल–ए–इलाही या ईश्वर की छाया के रूप में वर्णित किया गया था, और उसकी वंशावली को बहुत प्रभावशाली बनाया गया था। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारत में राजत्व की दैवीय उत्पत्ति एक स्वीकृत प्रथा थी। झरोखा दर्शन जैसी प्रथाएँ, जिसमें राजत्व की दिव्य उत्पत्ति को दोहराया गया था, मुगल साम्राज्य में एक नियमित प्रथा थी। इस प्रकार, हम मुगलों द्वारा इलाके का सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाओं से संबंधित होने का प्रयास पाते हैं।

आइये हम संक्षेप में राजस्थान और मराठा क्षेत्र में राज्य गठन की प्रक्रिया की जाँच करें ताकि विविध तरीकों को उजागर किया जा सके, जिनके माध्यम से शासकों द्वारा अपनी वैधता स्थापित करने के लिए प्रचलित धार्मिक भावनाओं और सांस्कृतिक प्रथाओं का अधिग्रहण किया गया था। गुहिला या सिसोदिया; मेवाड़ के शासक स्वयं को एकलिंगजी (भगवान शिव) का दीवान कहते थे। उन्होंने कभी भी स्वयं को क्षेत्र के शासक होने का दावा नहीं किया बल्कि भगवान शिव के सहायक के रूप में काम किया। दिलचस्प बात यह है कि मेवाड़ के शासकों का भील प्रमुख द्वारा राज्य अभिषेक किया जाता था और इस प्रकार वे प्रजा से एक अलग प्रकार की वैधता का दावा कर सकते थे। इसी तरह की परंपरा बीकानेर क्षेत्र में राज्य गठन की प्रक्रिया में देखी जा सकती है, जहाँ शासकों ने स्थानीय देवी करणी माता के माध्यम से वैधता का दावा किया था। प्रभावशाली वंशावली के माध्यम से वैधता स्थापित करने में स्थानीय चारण–भाटों द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका पर गौर करना महत्वपूर्ण है। पंद्रहवीं शताब्दी के गुजरात के मामले में दिलचस्प साक्ष्य देखे जा सकते है (अपर्णा कपाडिया, *इन प्रेज ऑफ किंग्सः राजपूत्स, सुल्तान एंड पोएटस इन फिफटीन्थ सेन्चुरी गुजरात,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, लंदन, मेलबार्न; न्यू दिल्ली, सिंगापुर, 2018)।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शिवाजी ने वैवाहिक संबंधों के माध्यम से अपनी स्थिति सुदृढ़ की। स्थापित परिवारों के साथ वैवाहिक संबंधों ने धीरे–धीरे उनके परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाया। इसके अलावा गंगाभट्ट और बनारस के और ब्राह्मणों की मदद से सूर्यवंशी क्षत्रिय के रूप में उनका राज्य अभिषेक क्षत्रिय होने के माध्यम से सामाजिक वैधता हासिल करने के उनके प्रयासों की गवाही देता है। उन्होंने क्षत्रिय होने के अपने दावे को वंशावली की मदद से अपने को इन्द्र से जोड़कर और क्षत्रिय कुलवत्स जैसी उपाधियों से पुष्ट किया। इससे उन्हें अन्य मराठा परिवारों की तुलना में उच्च स्थिति का दावा करने में मदद मिली और उन्होंने धीरे–धीरे सरदेशमुखी को इकट्ठा करने का अपना अनन्य दावा स्थापित किया।

आर. पी. बहुगुणा ने तर्क दिया है कि राज्य गठन के वैचारिक निर्माण के घटकों के रूप में शाही सार्वजनिक अनुष्ठानों की भूमिका और शाही सत्ता के वैधीकरण के स्रोतों के रूप में अठारहवीं शताब्दी में एक नया आयाम प्राप्त हुआ (इसके विवरण की **इकाई 11** में चर्चा की गई है)। नोर्बर्ट पीबाड़ी का तर्क है कि अठारहवीं शताब्दी में कोटा राज्य की सैन्य राजकोषीय नीति पुष्टिमार्गी वैष्णव अनुष्ठानों, मूर्ति स्थापना और पूजा, संरक्षण और उपहार देने में राज्य की सक्रिय भागीदारी पर आधारित एक राजनैतिक संस्कृति से निकटता से जुड़ी हुई थी। हालांकि, हिन्दु राजत्व को मानने में समस्याएँ इस तथ्य से उत्पन्न होती हैं कि प्रारंभिक

आधुनिक समय के दौरान हम धार्मिक संबंधों में बहुत अधिक विचलन पाते हैं। यह मराठों और राजपूतों की पूर्व–औपनिवेशिक क्षेत्रीय राज्यों की औपनिवेशिक अधीनता थी, जिसके कारण औपनिवेशिक प्रायोजन और पर्यवेक्षण के तहत पूर्ण हिन्दु राजत्व का उदय हुआ। दूसरी ओर सुसन बेली ने तर्क दिया है कि अठारहवीं शताब्दी की भारतीय क्षेत्रीय राज्य व्यवस्थाओं में ब्राह्मण शक्तिशाली बने रहे। उन्होंने अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश क्षेत्रीय राज्यों में राजनैतिक व्यवस्था को ब्राह्मण राज के रूप में चिन्हित किया है (आर. पी. बहुगुणा, रीलिजिस फेस्टिवल्स ऐज पोलिटिकल रिचवअल्स; किंगशिप एंड लेजिटिमेसन इन लेट प्री कोलोनियल राजस्थान, सूरजभान भारद्वाज, आर पी बहुगुणा एवं मयंक कुमार, सं., *रीविजिटिंग द हिस्ट्री ऑफ मेडिवल राजस्थान; एसेज फॉर प्रोफेसर दिलबाग सिंह,* प्राइमस बुक्स, नई दिल्ली, 2017)।

12.4 विरोधाभासी रूझान

राज्य, धर्म और समाज के बीच संबंध हमेशा से बहुत गतिशील रहे हैं। राजनीतिक लिहाज, आर्थिक स्थिति और सामाजिक परिस्थितियाँ परिभाषा से ही बहुत परिवर्तनशील रहे हैं और इन कारकों के बीच अन्तःक्रिया कई बार विरोधाभासी प्रतीत होती है। इसलिए, लम्बे समय तक या एक बड़े क्षेत्र के लिए सामान्यीकरण करना हमेशा उचित नहीं होता है। सतीशचन्द्र ने औरंगजेब के तहत् मुगल धार्मिक नीति की जाँच–पड़ताल की और विरोधाभासी रुझानों की ओर इशारा किया। जहाँ एक तरफ औरंगजेब को धार्मिक कट्टर के रूप में देखा जाता है, जो हिन्दुओं के खिलाफ था जैसा कि जाजिया को फिर से लागू करने की उसकी नीति में दिखाई पड़ता है, वहीं दूसरी ओर हम मुगल कुलीन वर्ग में हिन्दुओं की संख्या में तीव्र वृद्धि पाते हैं। इसी तरह इस बात के प्रमाण हैं कि मुगल शासकों, यहाँ तक कि औरंगजेब ने भी मन्दिरों को भू–राजस्व अनुदान प्रदान किये और अपने शासन के तहत् मन्दिरों का विध्वंस भी किया। जैसा कि **इकाई 13 वास्तुकला** में चर्चा की गई है कि वाराणसी विश्वनाथ मन्दिर का निर्माण राजा टोड़रमल द्वारा लगभग 1595 में करवाया गया था, हालांकि इस मन्दिर को मुगल बादशाह औरंगजेब ने 1669 में नष्ट करवा दिया और मथुरा के मन्दिरों को 1670 में उसके आदेश पर नष्ट कर दिया गया था। जहाँगीर के शासन काल में बुंदेलखंड के बीर सिंह देव द्वारा दो बड़े मन्दिरों का निर्माण करवाया गया था, एक उनकी राजधानी ओरछा (चर्तुभुज मन्दिर) में और दूसरा मथुरा में। चर्तुभुज मन्दिर को बाद में मुगल बादशाह शाहजहाँ द्वारा अपवित्र कर दिया गया था और मथुरा मन्दिर को औरंजेब के आदेश पर नष्ट कर दिया गया था जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

12.5 मिश्रित सामाजिक आदेश

राज्य, धर्म और समाज के बीच संबंधों को तत्कालीन समय के धार्मिक, राजनैतिक संभाषणों की प्रकृति में ही अच्छी तरह से समझा जा सकता है। यह देखना दिलचस्प है कि *दबिस्तान–ए–मजाहिब* (अधिक विवरण के लिए **इकाई 1** देखें) जैसे ग्रन्थ लिखे गये थे और प्रचलन में थे। ये इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि संस्कृति मिश्रित थीं। हिन्दू बड़े पैमाने पर फारसी में लिख रहे थे, जिसका अर्थ है कि भाषा पहचान–चिन्ह नहीं थी, जैसा कि आजकल देखा जाता है।

इसके अलावा, यह समझना महत्वपूर्ण है कि धार्मिक विभाजन के द्वि–गुण को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया था, विशेषकर यदि हम सामाजिक परिवेश के चरित्र की जाँच करते हैं। गैर–मुस्लिम विशेष रूप से हिन्दुओं को एक मुस्लिम राज्य के प्रशासन में उदारतापूर्वक शामिल किया जाता था, उसी तरह शिवाजी की सेना और प्रशासन में कई मुस्लिम अधिकारी थे। राजपूत शासकों का भी यही हाल था, जहाँ कई मुसलमान महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत थे। इसी तरह की प्रवृत्ति मुगल कुलीन वर्ग की रचना में भी परिलक्षित होती है, जहाँ हिन्दुओं को महत्वपूर्ण पदों पर रखा गया था। प्रशासन में कार्यरत हिन्दुओं को फारसी की बारीकियों की अच्छी जानकारी थी।

आपने **इकाई 17** के साथ–साथ **इकाई 1** में और **बी एच आई सी 109 और 107** के पाठ्यक्रम में देखा होगा कि सांस्कृतिक विभाजन धार्मिक नहीं था। अखलाक परंपरा का गैर–मुसलमानों द्वारा भी बड़े पैमाने पर अनुपालन किया जा रहा था। मिश्रित संस्कृति मुंशी और कायस्थों के मामले में विशेष रूप से दृष्टिगोचर है, जो न केवल फारसी भाषा से बल्कि दरबार के शिष्टाचार और दस्तूर से भली–भांति परिचित थे। ये दरबारी संस्कृति और दस्तूर अपने आप में अभिविन्यास में सर्वदेशीय थे और इनमें मिश्रित संस्कृति सही अर्थ में झलकती थी।

मुगल शासक सूफियों और सन्तों के पास अक्सर जाते थे और विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करते थे। दारा शुकोह कंधार से बहुत ही अपमानजनक हार के बाद लौटते समय ध्यानपुर में बाबा लाल से मिले। बाबा लाल की उसकी यात्रा और उनके साथ बातचीत रिकार्ड की गई थी और मुगल सार्वजनिक क्षेत्र में प्रचलन में थी। दारा शुकोह का आमतौर पर धार्मिक प्रवचनों के प्रति झुकाव माना जाता है, और इसलिये यह एक अपवाद दिखाई पड़ सकता है, लेकिन यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि शासकों में धार्मिक और साम्प्रदायिक विभाजन से परे सन्तों के साथ मिलने और बातचीत करने की एक लम्बी परंपरा है। ''सभी प्रकार की आध्यात्मिक दिव्य शक्तियों से परामर्श करना एक लंबे समय से चली आ रही तैमूरवादी परम्परा थी, जिसे दारा के सभी मुगल पूर्वजों द्वारा जारी रखा गया था। मोहम्मद तुगलक (शासनकाल 1325–51) के प्रसिद्ध जैन भिक्षु जिन प्रभा सूरी के साथ घनिष्ट संबंध विशिष्ट थे। (हुसैन, पृष्ठ 311, 39)। दारा से कुछ ही समय पहले अकबर ने 1598 में सिख गुरू अर्जन से विशेष मुलाकात की थी (ग्रेवाल, पृष्ठ 55)। अकबर और जहाँगीर दोनों कई बार एक गोसाई साधु जधरूप से मिले थे, जिनकी रहस्यमय उपदेशों की समझ ने जहाँगीर को इतना प्रभावित किया कि उन्हें विश्वास हो गया कि तसव्वोफ और वेदांत वास्तव में एक ही ज्ञान है (जहाँगीर, पृष्ठ 209)। शाहजहाँ भी, अक्सर स्वयं रहस्यमय सलाहकारों से घिरा रहता था, और जबकि उसका झुकाव सूफियों की ओर अधिक रहा था लेकिन उसका दरबार चन्दरभान ब्राह्मण जैसे रहस्यमयी झुकाव वाले हिन्दुओं से सराबोर था और उन हिन्दु ज्योतिषियों और अन्य दिव्य पुरूषों का क्या उल्लेख करें जिनके साथ वे लगभग प्रतिदिन परामर्श करते थे। वास्तव में, इस पूरी अवधि के दौरान सिद्धि चन्द्र, केवश दास और जगन्नाथ पंडित राज जैसे संस्कृत और ब्रज के बुद्धिजीव मुगल शाही दरबार के साथ–साथ विभिन्न कुलीन जनों के उपशाही दरबार से निरंतर जुड़े हुए थे'' (बुस्च 2006, और आगामी; पोलक 2002क, 2001ख)।'' (राजीव किनरा, ''इनफैन्टिलाइजिंग बाबा दाराः द कल्चरल मैमोरी ऑफ दारा शिकुह एंड द मुगल पब्लिक स्फीयर'', *जरनल ऑफ प्रशियनेट स्टडीज*, अंक 2, 2009 पृष्ठ 165–193)।

बोध प्रश्न 2

1) राज्य, धर्म और समाज बहुत जटिल तरीके से कार्य करते हैं। भारत में सोलहवीं–अठारहवीं शताब्दी के राज्यों के संदर्भ में विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) मिश्रित सामाजिक परिवेश से आप क्या समझते हैं? सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी के भारत की परिस्थितियों की उपयुक्त उदाहरणों के साथ अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

.....

.....

.....

.....

12.6 सारांश

सारांश में हम कह सकते हैं कि राज्य, धर्म और समाज के बीच संबंध की जटिलता को विस्तार से समझने की आवश्यकता है और बेहतर समझ के लिए विविध परंपराओं की उचित व्याख्या आवश्यक है। राज्य या धर्म या समाज एक अखंड संस्था नहीं है और न ही जड़ या स्थिर है, इसलिए हमें बदलती गतिशीलता को उचित मान्यता देनी चाहिए। दरबारी इतिवृत्तों और ब्रिटिश औपनिवेशिक इतिहास लेखन से आगे बढ़कर सांस्कृतिक लोकाचार की जाँच–पड़ताल हमें एक बहुत समृद्ध और विविध सांस्कृतिक परंपराओं के अस्तित्व को समझने में मदद करती है। विभिन्न धर्म के अनुयायियों के बीच अपने सम्प्रदाय संबंधी प्रवचनों को प्रचारित करने के प्रयासों में राजनैतिक संरक्षण के लिए होने वाले प्रतिवाद समाज के महत्वपूर्ण फलक थे। राजनीतिक अधिकारी भी धर्म और सम्प्रदाय संबंधी विभाजन से परे सूफियों और सन्तों से परामर्श कर रहे थे और यह एक नियमित विशेषता थी।

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 12.2.1 देखें।

2) उपभाग 12.2.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 12.3 देखें।

2) भाग 12.5 देखें।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Bahuguna, R.P. 2017. 'Religious Festivals as Political Rituals: Kingship and Legitimation in Late Precolonial Rajasthan', in Suraj Bhan Bhardwaj, R. P Bahuguna and Mayank Kumar, Eds., *Revisiting the History of Medieval Rajasthan: Essays for Prof Dilbagh Singh*. New Delhi: Primus Books.

Kapadia Aparna. 2018. *In Praise of Kings: Rajputs, Sultans and Poets in Fifteenth-Century Gujarat.* Cambridge, London, Melbourne, New Delhi, Singapore: Cambridge University Press.

Kinra, Rajeev. 2009. "Infantilizing Bâbâ Dârâ: The Cultural Memory of Dârâ Shekuh and the Mughal Public Sphere," *Journal of Persianate Studies*, Vol. 2, pp. 165–193.

Kumar, Mayank 2013. *Monsoon Ecologies: Irrigation, Agriculture and Settlement Patterns in Rajasthan during the Pre-Colonial Period.* Delhi: Manohar.

Nath, Pratyay and Meena Bhargava, Eds. (Forthcoming). *The Early Modern in South Asia: Querying Modernity, periodisation and History.* Delhi: Cambridge University Press.

Sahai, Nandita Prasad. 2006. *Politics of Patronage and Protest: The State, Society and Artisans in Early Modern Rajasthan*. New Delhi: Oxford University Press.

Singh, Dilbagh. 1990. *The State, Landlords and Peasants.* Delhi: Manohar.

_____, 2003. 'Regulating the Domestic: Notes on the Pre-colonial State and the Family', *Studies in History*, Vol., 19, No.1, n.s, pp. 69–86.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY